International Journal of Applied Research 2017; 3(1): 926-929

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(1): 926-929
www.allresearchjournal.com
Received: 23-11-2016
Accepted: 29-12-2016

डॉ. प्रिय अशोक
+2 शिक्षक, इतिहास विभाग, +2 बी. के. डी. राजकीय बालक उच्च विद्यालय, (जिला स्कूल), दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ. प्रिय अशोक
+2 शिक्षक, इतिहास विभाग, +2 बी. के. डी. राजकीय बालक उच्च विद्यालय, (जिला स्कूल), दरभंगा, बिहार, भारत

आधुनिक शिक्षा साहित्य एवं राजा राममोहन रायः एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ. प्रिय अशोक

सार–संक्षेप
राममोहन के जन्म के समय अर्थात् जब ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में प्रशासनिक पैर जमाना आरंभ कर दिया, उस अराजक राजनैतिक और सामाजिक परिस्थिति में, देश में शिक्षा की स्थिति कैसी रही होगी कल्पना करना बहुत कठिन नहीं है। उस काल में शिक्षा बहुत ही सीमित वर्ग को ही उपलब्ध थी। गांवों में कुछ पाठशाला या टोल थे जहां संस्कृत शिक्षा दी जाती और कुछ मस्जिदों से संलग्न मदरसों या मकतबों में अरबी–फारसी में धार्मिक शिक्षा दी जाती। संस्कृत के उच्च अध्ययन के लिए उत्तर भारत में वाराणसी, उज्जैन जैसे केंद्र थे तो अरबी–फारसी के केंद्र पटना, रामपुर, दिल्ली आदि नगर थे। जनशिक्षा या साक्षरता का कोई भी प्रयास इस काल में होना संभव नहीं था। छापेखाने की स्थापना इसी काल में भारत की भूमि पर पहले–पहल आरंभ हुई। फारसी अभी तक राजभाषा थी। यद्यपि भारत में अंगरेजी शासन को पचास वर्ष हो रहे थे लेकिन प्रशासन और अदालत का काम मुगलकालीन तौर तरीके से चल रहा था। इसी कारण अरबी–फारसी और उर्दू शिक्षा की ओर अभिजात या संपन्न वर्ग का ध्यान था। फारसी शिक्षा के लिए राममोहन को बचपन में पटना भेज दिया गया था। वारन हेस्टिंग्स के जमाने में यह महसूस किया गया कि इस्लाम धर्म और शास्त्रों के पठन–पाठ के लिए और अरबी–फारसी और उर्दू के उन्नयन के लिए कलकत्ता में कोई विद्यालय नहीं है। इसी से हेस्टिंग्स ने 1780 में कलकत्ता 'मदरसा' की स्थापना की। इस प्रकार देखा जाय तो संस्कृत और अरबी–फारसी की शिक्षा कई शताब्दियों से सीमित स्वार्थ के लिए सीमित वर्ग तक ही नियंत्रित था। स्वार्थ था प्रशासकीय और धार्मिक ठेकेदारी। आज के युग में जिसे जनशिक्षा की संज्ञा दी जाती है यह विचार उस समय तक लोगों के ध्यान में आया ही न था।

परिचय
भारत में अंग्रेजी शिक्षा की संभावनाओं के बारे में पहली सुचिन्तित टिप्पणी, ईस्ट इंडिया कंपनी के एक वरिष्ठ अधिकारी चार्ल्स ग्रान्ट 1792 में पेश की थी। इस टिप्पणी में सिफारिश की गई थी कि यूरोपीय विज्ञान और साहित्य भारत में अंग्रेजी माध्यम से परिवर्तित किया जाय। क्योंकि उनकी धारणा थी कि इस पद्धति से ''मानसिक दासता की जंजीरें टूटेंगी।'' तकनीकी ज्ञान और मशीन के प्रवर्तन से, साधारण जनता की औद्योगिक अभिरूचि बढ़ेगी और मानसिक जड़ता से मुक्त होकर वे सक्रिय हो उठेंगे। देश की शक्ल ही बदल जायेगी। उस समय ग्रान्ट साहब के विचार कंपनी के प्रभुओं को आवश्यकता से अधिक प्रगतिशील लगे। ग्रान्ट साहब के विचारों से प्रभावित होकर सन् 1793 में श्री विलबरफोर्स ने ब्रिटिश पार्लियामेंट में एक प्रस्ताव रखा जिसमें कहा गया कि यह ब्रिटिश सरकार का नैतिक कर्तव्य है कि विवेकपूर्ण साधनों के द्वारा भारत में ब्रिटिश अधिकार क्षेत्र में लोगों की भलाई और खुशहाली के लिए कदम उठाये जाय। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ऐसे उपाय किये जाय जो उपयोगी ज्ञान विज्ञान के साथ धार्मिक और नैतिक उन्नति में सहायक हों। इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए 1813 के चार्टर–एक्ट में व्यवस्था की गई और ऐसे लोगों को, जो देशी लोगों में शिक्षा धर्म और नैतिकता का प्रचार करना चाहें, भारत जाने की अनुमति दी गई।
सन् 1811 में लार्ड मिन्टो के प्रशासकीय विवरण में भारत में शिक्षा की स्थिति के बारे में बहुत ही निराशाजनक छवि प्रस्तुत की थी। उन्होंने कहा था कि विज्ञान और साहित्य दोनों ही अपक्षय की स्थिति में पहुंच चुके हैं। धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त और किसी प्रकार की शिक्षा या प्रशिक्षण एक प्रकार से बंद है। अनेक उपयोगी ग्रंथ व्यवहार न होने के कारण नष्ट हो रहे है। यदि सरकार इस ओर अपना हाथ नहीं बढ़ायेगी तो साहित्य और शिक्षा, पुस्तकों और अध्यापकों के अभाव में पूरी तरह नष्ट हो जायगी। इससे पहले राजे–महाराजे, नवाब आदि शिक्षा और विद्वता को संरक्षण दिया करते थे। विद्वानों और साहित्यकारों के लिए और कोई सहारा नहीं था। अब क्योंकि इस प्रकार का संरक्षण भी नहीं रहा, इसी से ज्ञान–विज्ञान की चर्चा धीरे–धीरे समाप्त होती जा रही है। लार्ड मिन्टो के विचार से उचित शिक्षा का अभाव ही इस देश के लोगों की अवनति का मुख्य कारण था

और एक अच्छे शासन के प्रवर्तन में भी बाधा है। क्योंकि नैतिक और धार्मिक शिक्षा की भी पूरी व्यवस्था नहीं है इसी से लोग दुराचारी हो गये हैं। अपराधों के लिए अज्ञानता ही मुख्य रूप से जिम्मेदार है। टिप्पणी में उन्होंने आगे लिखा कि इसीलिए आवश्यक है कि कुछ धन–राशि का अतिरिक्त प्रावधान किया जाय जिससे ज्ञान विज्ञान और शिक्षा–कार्य को फिर से प्रतिष्ठित किया जा सके। उन्होंने बनारस के संस्कृत कालेज की सुधार के लिए सिफारिश की साथ ही नदिया और तिरहुत में नये विद्यालय स्थापित करने का प्रस्ताव रखा। ऐसे ही विद्यालय भागलपुर और जौनपुर में भी स्थापित करने का सुझाव दिया। लार्ड मिन्टो के इस महत्वपूर्ण टिप्पणी के बावजूद इस ओर कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। सन् 1813 के ईस्ट इंडिया एक्ट की धारा में पहले पहल शिक्षा संबंधी जिम्मेवारी को स्वीकार किया गया और एक लाख रूपये की निर्धारित राशि प्रतिवर्ष साहित्य और शिक्षित वर्ग को उत्साहित करने और वैज्ञानिक शिक्षा के प्रोत्साहन के लिए खर्च करने का प्रावधान किया गया।

आगे चलकर सन् 1815 में लार्ड मोइरा के कंपनी के बोर्ड आफ डायरेक्टर्स के समक्ष शिक्षा संबंधी एक टिप्पणी पेश की। इस टिप्पणी में नैतिक और धार्मिक शिक्षा पर अधिक जोर दिया। इधर इन शिक्षा संबंधी वाद–विवाद और कागजी कार्यवाही के अलावा सरकार की ओर से कोई विशेष कदम नहीं उठाया गया। जो धनराशि शिक्षा के खाते में प्रति वर्ष रखी जाती उसका भी कोई व्यवहार नहीं किया गया। आगे चलकर 1824 में जब कलकत्ते में संस्कृत कालेज की स्थापना हुई तो इस धन का इस्तेमाल किया गया। इसका विवरण यथास्थान दिया जायगा।

इसी बीच सन् 1817 में कलकत्ता में हिन्दू कालेज, सन् 1818 में श्रीरामपुर में बैप्टिस्ट मिशन कालेज, और सन् 1820 में कलकत्ता में विशप कालेज की स्थापना गैर सरकारी क्षेत्र में आधुनिक शिक्षा के आरंभिक केंद्र थे। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी शिक्षा के लिए कुछ स्कूलों की शुरूआत भी इसी काल में हुई। सन् 1818 में सरकारी सहायता से 'स्कूल बुक सोसाइटी' नामक संस्था की स्थापना हुई इसका मुख्य उद्देश्य था अंगरेजी और बंगला भाषा में स्कूलों के लिए पाठ्य पुस्तकों की रचना और प्रकाशन। इधर साधारण जनता में अंग्रेजी सीखने का आग्रह बढ़ता जा रहा था। विद्यालयों की भारी कमी थी। कलकत्ते में जगह–जगह नये–नये अंग्रेजी स्कूलों की स्थापना होने लगी। 1818 में कैलकटा स्कूल सोसाइटी की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य था नये विद्यालयों की स्थापना में सहायता देना। ये सारे ही गैर–सरकारी प्रयास थे। इन संस्थाओं के साथ कुछ उदारपंथी, शिक्षाविद और धर्मप्रचारक भी थे। इनमे डेविड हेयर का नाम प्रमुख था। अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों की स्थापना में उनका उत्साह, सहयोग और परिश्रम सर्वविदित है। इसी काल में बंगाल और हिन्दी भाषा अपने आधुनिक रूप में विकास के पथ पर बढ़ रहे थे। मिशनरी लोग केवल बाइबिल का अनुवाद करके धर्म प्रचार कर रहे थे। मिशनरी लोग केवल बाइबिल का अनुवाद करके धर्म प्रचार कर रहे थे ऐसा कहना ठीक नहीं होगा। ज्ञान–विज्ञान की पुस्तकों की रचना और अंग्रेजी से अनुवाद करने में इन्हीं लोगों ने पहल की। इन परिस्थितियों के बावजूद अंग्रेजी भाषा और पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार और प्रसार के बारे में मत विरोध चल रहा था। सरकारी अमले के अधिकारी अब भी पारंपरिक शिक्षा अर्थात संस्कृत और अरबी–फारसी शिक्षा के पक्ष में थे। वस्तुतः इस काल में दो विरोधी पक्ष आमने सामने आ गये। एक दल जिनमें प्रसिद्ध प्राच्यविद सम्मिलित थे संस्कृत और अरबी फारसी की शिक्षा के पक्ष में थे तो दूसरी ओर राममोहन राय का दल था जो अंग्रेजी शिक्षा के प्रवर्तन के पक्ष में थे।

सन् 1823 में तत्कालीन सचिव श्री होल्ट मैकेंजी ने जो शिक्षा विभाग भी सम्हालते थे, शिक्षा के बारे में एक विस्तृत प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने आदर्श शिक्षा प्रणाली के बारे में विस्तार से प्रकाश डाला। शिक्षा के उद्देश्यों और सरकार की जिम्मेवारी के बारे में लिखते हुए उन्होंने स्पष्ट कहा कि देश के लोगों की खुशहाली और नैतिक उन्नति की जिम्मेवारी सरकार की है। उन्होंने प्राच्य विद्या और आधुनिक ज्ञान–विज्ञान दोनों प्रकार की शिक्षा देने की सिफारिश की।उन्होंने आगे कहा कि शिक्षण संस्थाओं में उच्च शिक्षित व्यक्ति रखे जाय और नई शिक्षण संस्थाओं में पूर्वी और पाश्चात्य विद्या को साथ–साथ पढ़ाया जाय। मैकेंजी साहब ने यहां तक सिफारिश की कि प्रस्तावित संस्कृत कालेज में भी विज्ञान–शिक्षा की व्यवस्था की जाय। मैकेंजी साहब की टिप्पणी में शिक्षा संबंध कुछ नई बातें देखने में आई। पहली बार एक आदर्श और आधुनिक शिक्षा नीति का स्वरूप सामने आया। प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृति के समन्वय की बात भी कही गयी जिससे उच्च श्रेणी से निम्न श्रेणी तक सभी को साथ लाने की बात सोची गयी। इसके अलावा प्राच्य विद्या और पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान की शिक्षा अंग्रेजी के माध्यम से देने का प्रस्ताव भी आया। लेकिन इन विचारों को प्रयोग में लाने के लिए अभी दस बारह वर्ष इंतजार करना पड़ा।, जब मैकाले ने 1835 में अंग्रेजी शिक्षा पर अपनी प्रसिद्ध टिप्पणी प्रस्तुत की, जो भारत आधुनिक शिक्षा के प्रवर्तन में मील का पत्थर बनी। जुलाई सन् 1823 को लार्ड आमहर्स्ट के जमाने में शिक्षा संबंधी एक कमेटी नियुक्त की गयी। उद्देश्य था, देश के इस भाग में शिक्षा संबंधी स्थिति का जायजा लेना और शिक्षा की उन्नति के बारे में नये सुझाव देना। साथ ही इस कमेटी को सारी सरकारी शिक्षण संस्थाओं की देखरेख करने का अधिकार दिया गया। इस कमेटी की सिफारिश पर यह तय पाया गया कि उपलब्ध धन से पहले कलकत्ते में एक कॉलेज की स्थापना की जाय जहां हिन्दू धर्मशास्त्रों का पठन–पाठन हो। यद्यपि यूरोपीय ज्ञान–विज्ञान की शिक्षा का सुझाव भी सामने आया लेकिन कुछ यूरोपीय प्राच्यविदों, जिनमें विलसन जैसे विद्वान भी थे, के आग्रह पर संस्कृत कालेज की स्थापना का प्रस्ताव पास हो गया। यह एक अजीब विडंबना थी कि यूरोपीय सदस्यो की कमेटी ने यूरोपीय और अंग्रेजी शिक्षा के विरूद्ध राय दी और संस्कृत और हिन्दू धर्म शास्त्रों के पठन–पाठन का समर्थन किया।

राममोहन का प्रसिद्ध पत्र शिक्षा विषयक कमेटी के पास भेजते हुए तत्कालीन उपसचिव ने लिखा था कि पत्र शिक्षा संबंधी सरकारी योजना के बारे में गलत धारणा से प्रेरित होकर लिखा गया है। वस्तुतः पार्लियामेंट के एक्ट के अनुरूप प्राच्य विद्या की शिक्षा देना सरकार का कर्तव्य है। राममोहन के विचारों को अतिशयोक्तिपूर्ण कहा गया। शिक्षा विषयक कमेटी के अध्यक्ष श्री हैरिंगटन ने प्रश्न को टालते हुए इतना कहा कि ये विचार व्यक्तिगत हैं इसकी सुनवाई का कोई प्रश्न ही नहीं। लेकिन उस काल में अंग्रेजी की भारी मांग थी। हम जानते ही हैं कि हिन्दू कालेज की स्थाना 1817 में इसी मांग को ध्यान में रखकर की गई थी। यद्यपि ईस्ट इंडिया कंपनी के कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स अंग्रेजी शिक्षा के पक्ष में थे और 1813 के अधिनियम में यूरोपीय शिक्षा के बारे में स्पष्ट निर्देश था, लेकिन यहां पर शिक्षा विषयक समिति जो विशेष रूप से प्राच्य विद्या के पक्ष में थी, ने यह तर्क दिया कि सरकार तिरहुत में संस्कृत विद्यालय स्थापन करने के लिए वचनबद्ध है और कलकत्ते का संस्कृत कालेज उसी के बदले में स्थापित करना सरकार का दायित्व है। यद्यपि यह तर्क युक्तिसंगत नहीं था फिर भी 1824 में राममोहन के विरोध के बावजूद संस्कृत कालेज की स्थापना हुई। लेकिन 'कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स' के कड़े रवैये के कारण शिक्षा विषयक कमेटी को आश्वासन देना पड़ा कि पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति के प्रचार और प्रसार के लिए भी प्रयत्न किये जायेंगे। इस प्रकार राममोहन के विचारों को किसी सीमा तक मान्यता मिल गयी थी। इस पाश्चात्य शिक्षा के पक्ष में राममोहन के अलावा कई प्रतिष्ठित भारतीय तथा यूरोपीय विद्वान थे। बिशप हेबर जैसे कलकत्ता के ईसाई धार्मिक नेता भी कम स्पष्टवादी नहीं थे। उन्होंने सरकारी नीति का खुलेआम विरोध

किया। उन्होंने स्पष्ट कहा था कि इन संस्कृत विद्यालयों से विशेष लाभ होने वाला नहीं हैं।

वस्तुतः राममोहन के पत्र ने, जो उन्होंने लार्ड अमहर्स्ट को लिखा था, अपने समसामयिक काल में बौद्धिक जगत को काफी प्रभावित किया था। नतीजा यह हुआ कि शिक्षा विषयक कमेटी के सदस्यों में एक गुट शिक्षा पाठ्यक्रम के आधुनिकीकरण के पक्ष में हो गया। यह गुट बाद में 'इंगलिश पार्टी' के नाम से जाना गया।

इस पाश्चात्य शिक्षा के समर्थक दल और प्राच्य विद्या के समर्थक दलों के बीच 1823 से अगले दस वर्ष तक यह बहस और वाद–विवाद चलता रहा। 1823 के आसपास यह विरोध और भी तीव्र हो गया। राममोहन के विचारों का मूल्यांकन इस तथ्य से होता है कि जहां सरकार द्वारा प्रकाशित संस्कृत, अरबी–फारसी की पुस्तकें गोदामों में पड़ी रही वही अंग्रेजी पाठ्य पुस्तकें हजारों की संख्या में बिक रही थीं। इसी बीच राममोहन के परम मित्र और शिक्षा शास्त्री एलक्जेण्डर डफ राममोहन के निमंत्रण पर कलकत्ता पहुंच चुके थे। वे भी शिक्षा विषयक समिति के सदस्य नियुक्त हुए। उनकी नियुक्ति से पाश्चात्य शिक्षा के समर्थकों का दल मजबूत हो गया। इधर लार्ड बेंटिक गवर्नर जनरल बनकर आ गये। उन्होंने शिक्षा के बारे में सिद्धांतों की नये सिरे से समीक्षा की और पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान और अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षा देने के पक्ष में स्पष्ट मत दिया। विलियम बेंटिक के विचारों को रूप देने के लिए शिक्षा विषयक कमेटी के सचिव ने एक पत्र द्वारा 22 जनवरी 1835 को दो मुख्य सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। इनमें पहला यह था कि देश की शिक्षा के बारे में शिक्षित और प्रतिष्ठित वर्ग को साथ लिया जाय, और दूसरा यह कि निर्धारित धनराशि, जो अपर्याप्त है, उसका इस्तेमाल उच्च शिक्षा की सहायता के लिए किया जाय।

अपने सुधारवादी आंदोलन के दौरान राममोहन इस तथ्य से अच्छी तरह अवगत थे कि जनजीवन और जनशिक्षा में देशी भाषाओं की क्या भूमिका हो सकती है। राममोहन ने आदर्श हिन्दू धर्म के मूल सिद्धांतों के प्रचार के लिए जो पद्धति अपनाई थी वह था धर्मग्रंथों का संस्कृत से जनता की भाषा में अर्थात् बंगला और हिन्दी में अनुवाद करना। देश की जनता में किसी भी भावना के विस्तार का माध्यम देशी भाषा ही हो सकती है यही राममोहन का दृष्टिकोण रहा है। कुछ विद्वानों का यह विचार है कि राममोहन आधुनिक बंगला गद्य के प्रवर्तक थे, ठीक ही है।

राममोहन से पहले बंगला गद्य का प्रयोग केवल कुछ कानूनी दस्तावेजों में होता था। यह भाषा अरबी–फारसी के शब्दों से बोझिल एक कृत्रिम भाषा थी, जिसमें कोई भी गंभीर साहित्यिक रचना संभव नहीं थी। राममोहन ने ही सबसे पहले बंगला गद्य में अरबी–फारसी शब्दों का तथा क्लिष्ट संस्कृत शब्दों का बहिष्कार कर भाषा में नया प्राण फूंका। भाषा को जनजीवन और विचारों की आवश्यकता के साथ समन्वित करने का पहला कदम राममोहन ने ही उठाया था। राममोहन द्वारा बंगला और हिन्दी भाषा में धर्मशास्त्रों के अनुवाद, उनके शास्त्रार्थ संबंधी लेख, पत्र–पत्रिकाओं की रचनाएं उस काल में भाषा की बानगी और सजीवता और शैली के उत्कृष्ट नमूने है।

गहन विषयों पर निबंध आदि लिखने के लिए कोई भाषाई आदर्श न होने के कारण राममोहन ने इस विषय पर विचार करते हुए लिखा था, ''बंगला भाषा में घरेलू व्यवहार के योग्य कुछ शब्द हैं और यह भाषा संस्कृत पर कितना निर्भर है इस बात का अनुभव दूसरी भाषा से इसकी तुलना करते हुए होता है।' यद्यपि सरल बंगला भाषा में गहन विषयों का अनुवाद कठिन कार्य था फिर भी उन्हें इस कार्य में पूरी सफलता मिली। इसी से स्पष्ट है कि राममोहन बंगला और संस्कृत भाषा की संरचनात्मक भिन्नता से अच्छी तरह परिचित थे और दोनों भाषाओं के व्याकरण संबंधी भेद उन्हें मालूम था। जब उनके समसामयिक विद्वानों ने कथा–कहानियों से देशी भाषा की सेवा आरंभ की तो राममोहन ने धर्म और दर्शन जैसे दुरूह विषयों से देशी भाषाओं का भंडार भरना आरंभ किया। सुकुमार सेन के शब्दों में– 'राममोहन को बंगला भाषा में सर्वप्रथम साहित्यिक गद्य लिखने का श्रेय प्राप्त है उन्होंने बंगला गद्य का उच्च विचारों और दर्शन की अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग किया। उस काल में बंगला गद्य की परिस्थिति को देखते हुए इसे बहुत बड़ी उपलब्धि समझनी चाहिए।'

राममोहन ने इस दिशा में अथक परिश्रम किया। उनके शास्त्रार्थ संबंधी लेख पत्रोत्तर और आगे चलकर पत्रकारिता के क्षेत्र में 'संवाद कौमुदी' के पृष्ठों में बंगला भाषा निखरने लगी थी। 1815 से 1830 तक राममोहन ने बंगला और अंग्रेजी में पुस्तक और पुस्तिकाएं प्रकाशित की और इनमें से भी अधिकतर उन्होंने अपने खर्चे पर छपवाकर बंटवायी। बंगला भाषा की उन रचनाओं को यदि ध्यान से देखें तो हमें ज्ञात होगा कि उन्होंने भाषा की सजीवता के लिए कितनी मेहनत की। 'वेदांत ग्रंथ' और 'वेदांत सार' जैसी पुस्तकों और 'चीनी और ईसाई पादरी के बीच बातचीत' जैसी पुस्तकों की भाषागत शैली में भारी भेद है जैसा कि होना ही चाहिए था।

देशी पत्रकारिता के क्षेत्र में राममोहन ने बंगला और हिन्दी दोनों भाषाओं में पत्रिका प्रकाशन क्षेत्र में समान रूप से पहल की। अंग्रेजी पत्रिका 'बंगाल हेराल्ड' के साथ ही राममोहन ने इस पत्रिका के बंगला, हिन्दी और फारसी संस्करण निकालने की योजना बनायी थी। बंगला के साथ हिन्दी 'बंगदूत' का प्रकाशन भी 1829 में हुआ था। वस्तुतः युगल किशोर शुक्ल द्वारा संपादित उदन्त मार्तण्ड हिन्दी की प्रथम पत्रिका थी। दुर्भाग्य से 1827 में ही इस पत्रिका का प्रकाशन बंद हो गया। हिन्दी भाषा में दूसरी पत्रिका प्रकाशन का श्रेय राममोहन को जाता है। 'बंगदूत' के माध्यम से राममोहन अपने विचार हिन्दी भाषी जनता तक पहुंचाने का प्रयास करते थे। उस समय हिन्दी जानने समझने वालों की बहुत बड़ी संख्या कलकत्ता में थी इसी से संभवतः उन्होंने हिन्दी पत्रिका के प्रकाशन की बात सोची होगी। यह सोचकर आश्चर्य होता है कि आधुनिक भारत के इस संक्रांति काल में एक व्यक्ति भारत की दो प्रमुख भाषाओं के निर्माण में समान रूप से अपना योगदान दे रहा था। राममोहन की दूरदर्शिता का परिचय इसी बात से मिलता है कि उन्होंने बंगला के साथ हिन्दी भाषा के महत्व और सार्वभौम भूमिका को समझा। अपने हिन्दी अनुवादों, लेखों और पत्रकारिता के माध्यम से उन्होंने हिन्दी गद्य के निर्माण, आधुनिकीकरण और उसके स्वरूप को संवारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हिन्दी गद्य के प्रारंभिक निर्माताओं में राममोहन का नाम सदैव स्मरण किया जायगा।

निष्कर्ष

राममोहन ने शिक्षा को समाज संस्कार के हथियार के रूप में व्यवहार किया। वस्तुतः आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा उनके विचार से देश और समाज में परिवर्तन लाने का प्रमुख पदक्षेप था। उनकी सारी प्रचेष्टा साधारण जनता के हितों को ध्यान में रखते हुए होती थी। वे युग धर्म को अच्छी तरह समझते थे। राममोहन के शिक्षा संबंधी उत्साह के प्रसंग में एक रोचक संस्मरण पडित क्षितिमोहन सेन ने 'विश्वभारती पत्रिका' के एक लेख में दिया था। तब लेखक बनारस में राममोहन के एक शिष्य 104 वर्षीय रामचन्द्र मौलिक, से भेंट करने गये थे। मौलिक महोदय ने, राममोहन के विचारों से अनुप्राणित होकर, सारा जीवन अशिक्षित जनता के बीच शिक्षा के प्रचार और प्रसार में लगाया था। राममोहन राय ने रामचन्द्र मौलिक से कहा था कि शिक्षा ही वक्त की सबसे बड़ी आवश्यकता है और शिक्षा का आरंभ समाज के सबसे नीचे वर्ग से करना चाहिए क्योंकि कड़ाही जब तक नीचे से गरम न हो खाना नहीं पक सकता।

संदर्भ सूचीः–

1. विश्वास, राममोहन समीक्षा, पृ. 214

2. मुखोपाध्याय, राममोहन ओ तत्कालीन समाज ओ साहित्य, पृ. 99–100
3. विश्वास, राममोहन समीक्षा, पृ. 215
4. Howell, Education in British India, p. 187.
5. Crewford. Rammohun Roy, p. 113.